स्कूली बच्चों में भय, तनाव एवं दुश्चिंता – एक विमर्श

केवलानंद काण्डपाल*

बच्चों को विद्यालय में ही नहीं वरन् घर पर भी भय, तनाव एवं दुश्चिंता से मुक्त वातावरण मिलना चाहिए। यह शिक्षाविदों, विचारकों के बीच हमेशा से ही चिंता का विषय बना रहा है। हमारी शिक्षा नीतियाँ, शिक्षा से जुड़ी विभिन्न समितियाँ इससे इत्तेफ़ाक रखती हैं। अब बच्चों के शिक्षा के अधिकार अधिनियम–2009 में इस संदर्भ में सशक्त प्रावधान किए गए हैं। बावजूद इसके विद्यालयों में इस संदर्भ में संवेदनशीलता बरती जा रही है, इसका हम दावा नहीं कर सकते हैं। घरों में भी परिदृश्य बहुत नहीं बदले हैं। विद्यालय आनंदालय बनें और घरों में भी इसके लिए पोषक वातावरण हो। इस आलेख में इन्हीं मुद्दों पर विचार करने का प्रयास किया गया है।

विद्यालयों के बारे में हमारी बाल अनुकूल सामान्य धारणा है कि विद्यालय ऐसा वातावरण उपलब्ध कराएँ, जिसमें बच्चे बिना किसी भय, दुश्चिंता एवं तनाव के प्रगति करें, विकसित हों और अंततः सीख सकें।

वर्तमान में विद्यालयों में दो तरह के अभिमुखीकरण (Orientation) मुख्य रूप से पाए जाते हैं। प्रथम– भय बच्चों को अपने विषयों को भली-भाँति सीखने में मददगार होता है और मध्य स्तर (Moderate level) का तनाव, बच्चों को परीक्षा में परिणाम हेतु तैयारी करने में मददगार है। द्वितीय– अनुशासन द्वारा बच्चों को देश के बेहतर एवं ज़िम्मेदार नागरिक बनाया जा सकता है। इस धारणा को कमोबेश अभिभावकों/समुदायों का मूक समर्थन भी हासिल होता है और प्रायः घरों में भी इसी प्रकार के अभिमुखीकरण के तहत भय एवं अनुशासन का माहौल सृजित किया जाता है।

इस संदर्भ में एक बहुमूल्य तथ्य की उपेक्षा की जाती है कि बच्चे वास्तव में अध्ययन करना चाहते हैं या फ़िर उन्हें अध्ययन करना पड़ता है ? इन दोनों प्रवृत्तियों में गहन अंतर है। इस संदर्भ में गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर से जुड़े एक प्रसंग का उल्लेख करना

* जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, बागेश्वर, उत्तराखंड 263642

उपयुक्त होगा। गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर को किसी नामचीन विद्यालय के किसी समारोह की अध्यक्षता करनी थी। जब गुरुदेव उस विद्यालय में पहुँचे तो वहाँ आम के फल से लदे हुए वृक्ष को देखकर लौट आए। सभी आश्चर्य में थे, चिंतित भी कि कहाँ गड़बड़ हो गई। टैगोर ने कहा, "मैं ऐसे विद्यालय का आमंत्रण स्वीकार नहीं कर सकता, जहाँ का माहौल जेल के परिदृश्य से मिलता-जुलता है। रसीले आम से लदा-फ़दा वृक्ष बच्चों को ललचाता होगा, परंतु उनकी पहुँच में नहीं है वरना वृक्ष पर रसीले आम बच्चों से बचते भला! ज़रूर इसकी वजह कठोर अनुशासन रही होगी।" इतने उच्च स्तर की संवेदनशीलता की आवश्यकता होती है भयमुक्त, तनावमुक्त एवं दुश्चिंता मुक्त वातावरण को आत्मसात् करने के लिए। अब हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि विद्यालय में भय, तनाव एवं दुश्चिंता मुक्त वातावरण बच्चे के सीखने एवं विकास में किस प्रकार सहायक होता है?

भारत बाल अधिकारों का समझौता (Convention on Child Right 1989) का हस्ताक्षरकर्ता देश है। इसमें अन्य बाल अधिकारों के साथ-साथ एक महत्वपूर्ण बाल अधिकार यह है कि बच्चे को भयमुक्त एवं तनावमुक्त वातावरण में जीवन का अधिकार प्राप्त होना चाहिए।

संयुक्त राष्ट्र संघ का बाल अधिकारों पर कन्वेशन 1989 के अनुच्छेद 12,19, 28 व 34 में बच्चों को भयमुक्त, तनावमुक्त एवं दुश्चिंता से मुक्त करने हेतु महत्वपूर्ण मार्गदर्शक सिद्धांत अभिविहित किए गए हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि बाल अधिकारों के कन्वेशन में बालक की आयु सीमा 18 वर्ष निर्धारित की गई है। इस प्रकार भारतीय संदर्भों में यह अधिकार विद्यालयी शिक्षा कक्षा12वीं तक विस्तारित हो जाता है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005 निर्देश देती है "सार्वजनिक स्थल के रूप में स्कूल में समानता, सामाजिक विविधता और बहुलता के प्रति सम्मान का भाव होना चाहिए। साथ ही बच्चों के अधिकारों और गरिमा के प्रति सजगता का भाव होना चाहिए। इन मूल्यों को सजगतापूर्ण स्कूल के दृष्टिकोण का हिस्सा बनाया जाना चाहिए और उन्हें स्कूली व्यवहार की नींव बनना चाहिए। सीखने की क्षमता देने वाला वातावरण वह होता है, जहाँ बच्चे सुरक्षित महसूस करते हैं, जहाँ भय का कोई स्थान नहीं होता और स्कूली रिश्तों में बराबरी और जगह में समता होती है। बहुधा इसके लिए शिक्षक को कुछ विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता सिवाय बराबरी का व्यवहार करने और बच्चों में भेदभाव न करने के।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005 (पृष्ठ 92) तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति – 1986 (National Policy on Education 1986) में भी विद्यालय में अधिगम को आनंददायक बनाने तथा भयमुक्त करने के लिए बाल केंद्रित अधिगम पर ज़ोर दिया गया था। इस प्रकार नीतियों में विभिन्न दस्तावेज़ों में इस मुद्दे पर बल दिया जाता रहा है कि बच्चों के प्रति समानता का भाव रखा जाए और सीखने को आनंददायी प्रक्रिया के रूप में विकसित किया जाए।

वर्तमान में बच्चों के अधिगम के विषय में दो प्रकार की धारणाएँ (Notion) व्याप्त हैं –

1. अध्यापक केंद्रित अधिगम – इसमें बच्चे को सूचनाओं का निष्क्रिय प्राप्तकर्ता माना जाता है, अध्यापक ज्ञान का अंतिम स्रोत एवं पाठ्यपुस्तकें अंतिम सत्य मान ली जाती हैं।

2. बाल केंद्रित अधिगम – इसमें धारणा यह रहती है कि बच्चा सक्रिय अधिगमकर्ता होता है। जो कुछ भी उसने सीखा है, बच्चे के लिए उसके मायने भी होते हैं अर्थात् बच्चे के लिए यह अर्थपूर्ण होता है। अध्यापक ज्ञान का अंतिम स्रोत न होकर मात्र सुगमकर्ता होता है और बच्चे की सीखने की प्रक्रिया में आवश्यकता पड़ने पर तथ्यों, चीज़ों एवं वातावरण को सुगम बनाता है। वस्तुत: बच्चे ज्ञान का सृजन करते हैं; मात्र सूचनाओं के संग्रहणकर्ता नहीं रह जाते।

उक्त दोनों धारणाओं पर गहनता से विमर्श करने पर हम पाते हैं कि वर्तमान में विद्यालयों में कमोबेश प्रथम धारणा पर ही बल दिया जाता है। यद्यपि कुछ स्व-प्रेरित एवं उत्साही शिक्षक बाल केंद्रित अधिगम को अपनाने का प्रयास अवश्य कर रहे हैं, परंतु यह आम प्रचलन (General Practice) तो नहीं है।

अध्यापक केंद्रित अधिगम/कक्षा विद्यालय में एक विशेष ढाँचे का सृजन करते हैं। मसलन–

- सही उत्तर ज्ञात न होने का भय कई बच्चों को कक्षा में मौन की ओर ले जाता है। जिससे वे भागीदारी और सीखने के समान अवसरों से वंचित रह जाते हैं। इतना ही नहीं सही उत्तर जानने का आत्मविश्वास खो देते हैं। अंतत: वे रटन्त प्रणाली में अपना आश्रय पा लेते हैं।
- होशियार, औसत, मूर्ख, प्रतिभाशाली आदि आधार पर बच्चों के वर्गीकरण की प्रक्रिया कक्षा प्रणाली का हिस्सा बन जाती है, अंतत: विद्यालय स्तर तक इसका व्याप्तीकरण होता रहता है।
- दंड का भय एवं कठोर नियंत्रण द्वारा बच्चों को कुछ निर्धारित नियमों एवं संहिताओं के पालन करने के लिए बाध्य किया जाता है। इसमें इस तथ्य की उपेक्षा की जाती रही है कि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के दौरान बच्चे अध्ययन करना चाहते हैं या फ़िर उन्हें अध्ययन करना पड़ता है? इन दोनों में शिक्षण शास्त्रीय दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण अंतर है।
- बच्चे विद्यालय में इसलिए आते हैं कि अध्ययनक्रम में उन्हें सीखने के आनंददायक अवसर मिल सकें। उनकी अभिव्यक्ति की, सीखने, विचारने की, प्रयोग करने एवं खोज करने की आज़ादी प्राप्त हो, न कि अनावश्यक प्रतिबंध लादकर दबाव-तनाव के द्वारा बच्चों को सम्प्राप्ति/प्रदर्शन हेतु बाध्य किया जाए।
- बच्चे सीखने की प्रक्रिया में मात्र अप्रत्यक्ष श्रोता बनकर रह जाते हैं। सीखने में उनकी भागीदारी के अवसर सीमित हो जाते हैं। इस कारण बच्चे सीखने की ज़िम्मेदारी नहीं ले पाते हैं। वस्तुत: यह ढाँचा बच्चों की भागीदारी एवं ज़िम्मेदारी के अवसरों को सीमित करता है। अंतत: यह बच्चों को रटने की प्रक्रिया की ओर ले जाता है। इसी में भय, तनाव एवं दुश्चिंता का बीजारोपण होता है।

इसके विपरीत जब कक्षा का वातावरण लचीला, सहयोगात्मक (Supportive) होता है तथा कक्षा को बच्चों की रुचियों, अभिरुचियों,

इच्छाओं, योग्यताओं एवं क्षमताओं के दृष्टिगत संचालित किया जाता है, जिसमें बच्चे स्वयं को स्वीकार्य महसूस करते हैं, निश्चित रूप से सीखने के उच्च स्तर तक ले जाता है।

विद्यालय/कक्षा-कक्ष में भय, तनाव एवं दुश्चिंता मुक्त वातावरण का सृजन

राष्ट्रीय शिक्षा नीति – 1986 ने इस बिंदु पर बल दिया कि बाल केंद्रित अधिगम अपनाया जाए, जिससे विद्यालय में सीखने-सिखाने की प्रक्रिया आनंददायक बन सके, बच्चों के लिए भय का कारक न बनने पाए।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005 में इस बारे में बहुत स्पष्टता के साथ कहा गया है कि बच्चे उसी वातावरण में सीख सकते हैं, जहाँ उन्हें लगे कि उन्हें महत्वपूर्ण माना जा रहा है। हमारे स्कूल आज भी सभी बच्चों को ऐसा महसूस नहीं करवा पाते। सीखने का आनंद एवं संतोष के साथ रिश्ता न होने के बजाय भय, अनुशासन व तनाव से संबंध हो तो यह सीखने के लिए अहितकारी होता है। (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005, पृ. 16)

शिक्षा का अधिकार अधिनियम – 2009 पुन: इस तथ्य को रेखांकित करते हुए कहता है कि 'किसी भी शिक्षक द्वारा बच्चों को शारीरिक दंड अथवा मानसिक रूप से प्रताड़ित नहीं किया जाएगा अन्यथा उनके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाएगी।' इस प्रकार विद्यालय में तनावरहित वातावरण सृजन करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण उपबंध है।

बच्चों की आवश्यकताओं, इच्छाओं एवं अनुभवों को शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के अभिन्न अंग बनाए जाने की प्रक्रिया शिक्षण शास्त्र में मानवीय दृष्टिकोण (Humanistic Approach) की दृष्टि से भी प्रासंगिक है। यह विश्वास कि प्रत्येक बच्चा अनूठा है और उसकी गरिमा एवं स्व (Self) को महत्व दिया जाना ज़रूरी है। यह हमारे संविधान का महत्वपूर्ण मूल्य भी है। बच्चों को ऊपर वर्णित सभी विचार एवं मूल्य, बच्चों के सीखने एवं विकास हेतु सकारात्मक वातावरण (Coducive Environment) निर्माण के लिए बहुत ज़रूरी है। यहाँ पर यह विचार बहुत समीचीन जान पड़ता है कि विद्यालयों में सीखने-सिखाने का बाल केंद्रित वातावरण का सृजन किस प्रकार किया जाए?

- विद्यालय का मुख्य उद्देश्य शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ एवं प्रसन्न व्यक्तित्व का निर्माण होना चाहिए, न कि परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थी तैयार करना। इसके लिए सीखने-सिखाने का आनंददायक वातावरण निर्मित करने पर ज़ोर दिया जाना चाहिए, जहाँ बच्चे सीखने का आनंद ले सकें। ज्ञान के प्रति प्रेम विकसित कर सकें, तथ्यों एवं विषय को रटने का तनाव एवं दुश्चिंता से मुक्त होकर ज्ञान सृजन की प्रक्रिया का हिस्सा बन सकें।
- विद्यालय सीखने के अनुकूल (Coducive) वातावरण का सृजन करें। जहाँ बाहर से थोपे गए अनुशासन से सृजित भय न हो वरन् व्यक्ति की गरिमा (Diginity of Person), अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, भागीदारी जैसे लोकतांत्रिक मूल्यों के आलोक में स्वयं को जान सकें। अपनी प्रगति को जाँच परख सकें।

- विद्यालय में बच्चों में आपसी तुलना के द्वारा कटु प्रतिस्पर्धी वातावरण सृजित न किया जाए। इसके बजाय प्रत्येक बच्चे, उसकी विशेषता एवं सामर्थ्य को एक स्वतंत्र इकाई के रूप में स्वीकार किया जाए। बच्चा जैसा है, वैसा स्वीकारना होगा। वह जो कर सकने का सामर्थ्य रखता है, उसका पूर्ण उपयोग करने के अवसर विद्यालय में दिए जाएँ।
- विद्यालयों को बाल केंद्रित (Child Centered) एवं बाल मैत्रीपूर्ण (Child Friendly) बनाने की आवश्यकता है। ऐसे विद्यालय शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति को वरीयता देते हैं। बच्चों की आवश्यकताओं, रुचियों एवं सामर्थ्य (Potential) को सर्वोच्च वरीयता दी जाती है। इसके लिए परंपरागत विद्यालय/कक्षा-कक्ष में व्यापक बदलाव की आवश्यकता है। बच्चे और उसकी स्कूलिंग को लेकर हमारे परंपरागत विश्वासों एवं मान्यताओं के पुनर्परीक्षण की आवश्यकता है।
- विद्यालय/कक्षा-कक्ष में अनुशासन एवं दंड की धारणा (Notion) में बदलाव ज़रूरी है। अध्यापक-छात्र संबंध भय एवं सत्ता पर आधारित न होकर, सम्मान एवं भागीदारी पर आधारित होने चाहिए। विद्यालयों में अध्यापक-छात्र के मध्य सत्ताधिकारिता (Hierarchy of Authority) के ढाँचे को चुनौती देने की आवश्यकता है। बच्चों के शिक्षा के अधिकार अधिनियम–2009 ने प्रत्येक शिक्षक/विद्यालय के लिए बाध्यकारी कर दिया है कि विद्यालय में बच्चों को तनावमुक्त वातावरण प्रदान किया जाए।
- कक्षा-कक्षों में और इसके बाहर विद्यालयों में भी बच्चों के मत को स्थान देने की आवश्यकता है। अध्यापक की भूमिका कक्षा में जाकर केवल पढ़ा-लिखा देना भर ही नहीं है, वरन् बच्चों में व्यक्ति की गरिमा, स्वतंत्रता एवं समानता जैसे लोकतांत्रिक मूल्यों का बीजारोपण करना भी है। बच्चों द्वारा विषयगत प्रदर्शन करना तो महत्वपूर्ण है ही, परंतु इससे भी महत्वपूर्ण है बच्चों में मानवीय संवेदनाओं का विकास किया जाए, जो समावेशी समाज के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु आवश्यक हैं।
- यहाँ पर अब घटकों की जाँच पड़ताल करनी आवश्यक जान पड़ती है। जो विद्यालय/कक्षा-कक्ष के वातावरण को भय, तनाव एवं दुश्चिंता में तब्दील करते हैं।

अनुशासन – एक अनुशासित कक्षा की हमारी सामान्य अवधारणा यह है कि कक्षा शान्त हो। (कभी-कभी तो इसे अतिरेक पिन ड्रॉप साइलेंस के रूप में भी महिमा मंडित किया जाता है)। शोरगुल वाली कक्षा को अध्यापक की अक्षमता से जोड़ दिया जाता है। बच्चों की सक्रियता, कक्षा की जीवंतता के तत्वों की उपेक्षा की जाती है। शोरगुल को अध्यापक की प्रभुसत्ता को चुनौती के रूप में देखा जाता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा–2005 में इस संदर्भ में बहुत ही तल्ख टिप्पणी की गयी है "बच्चों की आवाज़ एवं अनुभवों को कक्षा में अभिव्यक्ति नहीं मिलती। प्राय: केवल शिक्षक का स्वर ही सुनाई

देता है। बच्चे केवल अध्यापक के सवाल का जवाब देने के लिए ही बोलते हैं। कक्षा में वे शायद ही कभी स्वयं कुछ करके देख पाते हैं। उन्हें पहल करने के अवसर भी नहीं मिलते हैं।'' (राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा – 2005, पृष्ठ.15)

कक्षा में बच्चों की तर्कशक्ति, तार्किक चिन्तन एवं स्वीकृत ज्ञान को चुनौती देने की, बच्चों की आवाज़ दबी रह जाती है। अनुशासन के क्रम में कक्षा-कक्ष में विभिन्न प्रकार के जटिल ढाँचे पाये जाते हैं, जैसे—'एक बार में एक ही बच्चा बोले', 'तभी बोले जब सही उत्तर पता हो'। बच्चों को प्रयोग करने, गलतियाँ करने, सीखने का अपना तरीका एवं गति के अवसर न होने के कारण बच्चे ज्ञान निर्माण प्रक्रिया में भागीदार नहीं बन पाते हैं। हम जानते हैं कि गलतियाँ या त्रुटियाँ सीखने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग हैं। उन्हें बहुत कठोर रूप से नहीं देखा जाना चाहिए।

विद्यालय/कक्षा-कक्ष प्रक्रिया में अनुशासन का निहितार्थ है कि बच्चे सक्रिय हों, अपने व्यवहार एवं अधिगम हेतु ज़िम्मेदारी ले सकें। अधिगम केवल अध्यापक की जवाबदेही बनकर न रह जाए। अध्यापक एक सुगमकर्त्ता के रूप में भागीदार हो, प्रक्रिया को निर्देशित करे, इस क्रम में अधिगम हेतु प्रेरक वातावरण का सृजन कर रहा हो। बच्चों को अधिगम उत्तरदायित्व ग्रहण करने के लिए तैयार कर रहा हो।

अनुशासन की परंपरागत धारणा (Notion) में बच्चों से अपेक्षा की जाती है कि वह अनुशासनिक नियमों को स्वीकार करें, इनका पालन करें। बच्चों को इस बात की स्वतंत्रता शायद ही मिल पाती है कि वह नियमों को चुनौती दें, उन पर प्रश्न कर सकें, उन्हें कभी-कभी यह संज्ञान ही नहीं होता कि वे नियमों का पालन क्यों कर रहे हैं? आँख मूँदकर नियम पालन करना बच्चों में इस क्षमता का ह्रास कर देता है कि आखिर क्या सही है और क्या गलत ? जब नियमों/अनुशासन का कोई तार्किक आधार बच्चों को समझ में नहीं आता तो इस प्रकार बाहर से थोपे गए अनुशासन को बच्चे चुनौती देने का प्रयास करते हैं। वस्तुत: माध्यमिक/उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में इस प्रकार की चुनौतियाँ हम महसूस करते हैं, जहाँ पर अप्रश्नित (Unquestioned) प्रभुसत्ता बच्चों पर थोपी जाती तो बच्चे व्यवस्था एवं अनुशासन के तत्व को आत्मसात् नहीं कर पाते, उनको विद्यालय में और विद्यालय के बाहर के व्यवहार के सारभूत अंतर दिखलायी पड़ते हैं। इसके विपरीत विद्यार्थियों की सहभागिता से बनाए गए नियमों के पालन करने में विद्यार्थी तत्परता दिखाते हैं तथा उनके नियमों के प्रति स्वामित्व (Ownership) तथा जवाबदेही (Accountability) का भाव दिखायी देता है। विद्यार्थियों को अध्यापक एवं प्रधानाचार्य के परिप्रेक्ष्य पर चर्चा के अवसर दिए जाते हैं तो यह प्रक्रिया उन्हें स्वानुशासन के पथ पर ले जाती है। इस प्रक्रिया में बच्चे अनुशासन का तार्किक आधार समझ रहे होते हैं।

इसके लिए अनुशासन को बाहर से थोपने की ज़रूरत नहीं है। वस्तुत: विद्यालय/कक्षा-कक्ष में निर्धारित लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कुछ व्यवस्थागत नियम बनाए जाने ज़रूरी होते हैं। इन नियमों के निरूपण में बच्चों की सहभागिता हो। नियम पालन की जवाबदेही अध्यापक एवं बच्चों दोनों की हो। इस सहभागी व्यवस्था से सृजित

स्वानुशासन की प्रक्रिया बच्चों को अधिगम के लिए प्रेरित तो करेगी ही साथ ही लोकतांत्रिक प्रणाली हेतु ज़िम्मेदार नागरिक के अनुरूप व्यवहार का बीजारोपण करने में भी सहायक सिद्ध होगी।

अनुशासन की सहभागी प्रक्रिया में अध्यापक एवं छात्र आपसी चर्चा एवं बातचीत के द्वारा विद्यालय एवं कक्षा-कक्ष हेतु नियम निर्माण कर सकते हैं। इतना ही नहीं, इन नियमों के पालन हेतु विद्यार्थियों को नेतृत्व दिया जाए, नेतृत्व को चक्रानुक्रम में समय-समय पर परिवर्तित भी किया जाना चाहिए। विद्यालय में ऐसे अनेक अवसर मौजूद होते हैं, जहाँ पर यह रणनीतियाँ अपनाई जा सकती हैं, जैसे – प्रार्थना सभा, मध्याह्न भोजन, कक्षा बुलेटिन, कक्षा-कक्ष की साफ़-सफ़ाई, बाल-सभाएँ, सांस्कृतिक कार्यक्रम, खेल-कूद गतिविधियाँ, प्रोजेक्ट कार्य, शैक्षिक भ्रमण आदि। इससे विद्यालय में प्रभुसत्ता एवं अधिक्रम (Hierarchy) के जटिल ढाँचे को तोड़ने में भी सहायता मिल सकेगी तथा विद्यालय/कक्षा-कक्ष में प्रजातांत्रिक वातावरण निर्मित हो सकेगा। अनुशासन के नियमों को संबोधित करने के क्रम में प्रत्येक बच्चे की रुचि, अभिरुचि, सीखने के तरीके एवं सीखने की गति को भी ध्यान में रखना बहुत ज़रूरी है।

ऐसा नहीं है कि विद्यालय के बाहर बच्चे में भय, तनाव एवं दुश्चिंता उत्पन्न करने वाले कारक मौजूद नहीं हैं। प्राय: माता-पिता एवं परिवार द्वारा बच्चे पर अपेक्षाओं का बोझ लाद दिया जाता है। अत: माता-पिता एवं परिवार को यह तय करना होगा कि उन्हें एक ऐसा बच्चा चाहिए जो निरन्तर येन-केन प्रकारेण बेहतर अंक लाए या फ़िर एक ऐसा बच्चा चाहिए जो सीखने एवं ज्ञान के प्रति स्वाभाविक प्रेम रखता है। बच्चों को निरन्तर ट्यूशन, म्यूज़िक क्लासेज़, स्पोर्ट्स कोचिंग मे धकेलना बच्चे के लिए तनाव एवं दुश्चिंता का कारण बनता है। यह अभ्यास बच्चे की स्वाभाविक रुचियों का दमन करता है। इसका अतिरेक बच्चे के स्वाभाविक विकास में बाधक सिद्ध होता है। अभिभावक ऐसे स्कूलों का समर्थन करते हुए दिखलायी पड़ते हैं जो बच्चों पर गृह कार्य का बोझ डालकर उनको अति व्यस्त रखते हैं। ज्ञानार्जन की प्रक्रिया में यान्त्रिक व्यस्तता के बजाय एकाग्रता एवं संलग्नता अधिक ज़रूरी है। इसके लिए माता-पिता एवं अभिभावकों के दृष्टिकोण में बदलाव ज़रूरी है।

अध्यापक की सत्ता का दुरुपयोग – परंपरागत धारणा में अध्यापक-छात्र संबंधों में अध्यापक की सत्ता बच्चे की तुलना में उच्च स्तर पर समझी जाती है। यह मान लिया जाता है कि छात्र बिना प्रश्न उठाये अध्यापक के व्यवहार एवं कार्य को स्वीकार करेंगे। इसी क्रम में अध्यापक द्वारा अपने निजी कार्य करवाना या विद्यालय में इतर कार्य करवाने के लिए बाध्य करना आदि कुछ ऐसे अध्यापक व्यवहार हैं, जिनका कोई तार्किक आधार बच्चे समझ नहीं पाते। नालायक, बेवकूफ़, बेकार आदि के संबोधन बच्चे के स्व (Self) को ठेस पहुँचाते हैं। यह बच्चों में तनाव एवं दुश्चिंता पैदा करता है। बच्चे ऐसे अध्यापकों से अन्त:क्रिया करने से बचना चाहते हैं। इसका एक विकृत रूप भी यदा-कदा सुनाई पड़ता है और वह है जेंडर उत्पीड़न। यह बच्चे में मनोवैज्ञानिक तनाव एवं दुश्चिंता पैदा करता है। इस घटनाक्रम के लिए बालिकाएँ स्वयं को दोषी मानने लगती हैं। इससे उनके स्व को ठेस पहुँचती है।

अनेक बार ऐसा भी देखा गया है कि सही उत्तर पता न होने का भय कई बच्चों को कक्षा में बिलकुल मौन रखता है, जिससे वे भागीदारी और सीखने के अवसर से वंचित रह जाते हैं और सही उत्तर जानने का आत्मविश्वास खो देते हैं। ऐसे बच्चों को नालायक, मूर्ख, बेवकूफ़, बेकार आदि विशेषणों (Label) से नामित किया जाता है।

कक्षा में बच्चे का व्यवहार अध्यापक के व्यक्तित्व का विस्तार एवं अभिन्न भाग है। यदि बच्चे का व्यवहार भय, तनाव, दुश्चिंता, से संचालित है तो इसका संदर्भ अध्यापक के पेशेवर जीवन/व्यक्तित्व से जुड़ना स्वाभाविक है। कक्षा में कोई बात समझ में न आना कोई अपराध नहीं है। न जानने एवं सही उत्तर न जानने का भयपूर्ण ढाँचा खत्म करने की आवश्यकता है।

अध्यापक ज्ञान का एकमात्र स्रोत नहीं हैं। अध्यापक यह स्वीकारने का साहस करें कि बच्चों के अमुक सवालों का जबाब अभी नहीं दे पाएँगे... दरअसल मुझे ठीक-ठीक नहीं पता, खोज-बीन कर बताऊँगा। अध्यापक की इस ईमानदारी की बच्चे प्रशंसा करेंगे और न जानने/न आने के भय से मुक्त हो सकते हैं। विद्यालय बच्चे के लिए घर के बाद दूसरा घर माना जाता है। अत: यहां का वातावरण भी बच्चे के लिए घर की तरह ही सुरक्षित, संरक्षित होना चाहिए। विद्यालय बच्चों के जीवन के प्रति गरिमापूर्ण दृष्टिकोण, आत्मसम्मान (Self-respect) के मूल्यों को प्रस्थापित करें। बच्चों को इस प्रकार का वातावरण मिलना बच्चों के संवैधानिक अधिकारों में शामिल हो गया है। अत: यह विद्यालय एवं अध्यापकों की जबावदेही है कि वह बच्चों के अधिगम में सहायक (Conducive) वातावरण का सृजन करें। इसके लिए दंड, विभेदीकरण, मानसिक उत्पीड़न, सत्ता के दुरुपयोग को समाप्त करना होगा। इस संदर्भ में निम्नांकित कदम उठाए जाने आवश्यक होंगे–

- अनुशासन को परिभाषित करने की आवश्यकता है। बच्चे इस पर तार्किक चर्चा करें। अच्छे आचरण एवं ज़िम्मेदारी पूर्ण व्यवहार के बारे में अध्यापक एवं छात्रों के बीच वैचारिक स्पष्टता हो। बच्चे को बिना प्रश्न उठाये नियमों का पालन करने के लिए बाध्य करना अलोकतांत्रिक है।
- इस बात पर ज़ोर देने की आवश्यकता है कि बच्चे स्वयं का सम्मान करना सीखें। अपने कार्य एवं व्यवहार की ज़िम्मेदारी लेना सीखें। यह स्वानुशासन की दिशा में सकारात्मक कदम होगा
- अनुशासन के नियमों/संहिताओं का औचित्य बच्चों को स्पष्ट होना चाहिए। जहाँ तक संभव हो नियम/आचरण नियमावली के निर्माण में बच्चों की सहभागिता सुनिश्चित की जाए।
- बच्चे के प्रति अनुशासनात्मक कार्रवाई (यदि अपरिहार्य हो जाए) से पूर्व बच्चे की आवश्यकता के संदर्भ को ध्यान में रखा जाना चाहिए।
- बच्चे के विशेष सामाजिक संदर्भों के आधार पर बच्चों के प्रति पूर्वाग्रह से युक्त व्यवहार न किया जाए। विद्यालय एवं कक्षा-कक्ष की गतिविधियों की संरचना एवं आयोजन इस प्रकार किया जाए कि बच्चों में विभिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक

समूहों के प्रति संवेदनशीलता विकसित हो। प्रत्येक बच्चा आवश्यकता, योग्यता विशेष गुणों के संदर्भ में दूसरे से अलग होता है। यह विद्यालय/कक्षा-कक्ष में डराना, धमकाना (Bullying), वर्गीकरण करना (Labeling) तथा छात्रों में समूह संघर्ष की प्रवृति को रोकने में सहायक सिद्ध होगा।

दंड (Punishment) – अनुशासन से संबंधित एक धारणात्मक मूल्य दंड से संबंधित है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005 कहती है कि सभी प्रकार के शारीरिक दंडों के विरुद्ध कड़ा रुख अपनाने की ज़रूरत है। स्कूल की सीमाओं को समाज के प्रति अधिक उदार होना होगा। साथ ही पाठ्यचर्या का बोझ और परीक्षा संबंधी तनाव के सभी आयामों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। प्राथमिक से लेकर माध्यमिक और उसके बाद भी शारीरिक एवं भावनात्मक सुरक्षा हर प्रकार के सीखने की आधारशिला है। (राष्ट्रीय पाठयचर्या की रूपरेखा – 2005, पृष्ठ 16)

शिक्षा का अधिकार अधिनियम – 2009 सभी प्रकार के शारीरिक दंडों एवं मानसिक उत्पीड़न का निषेध करता है। इसी अधिनियम की धारा 29(2) (जी) एवं धारा 17 में स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि "किसी भी शिक्षक द्वारा बच्चों को शारीरिक दंड एवं मानसिक रूप से प्रताड़ित नहीं किया जाएगा। बच्चे को भय, तनाव एवं दुश्चिंता से मुक्त करते हुए अपने विचारों को स्वतंत्रता से अभिव्यक्त करने के अवसर दिए जाएँगे।"

शारीरिक दंड, दंड का एकमात्र स्वरूप नहीं है, इसके अलावा विविध प्रकार के जटिल ढाँचें भी विद्यालय/कक्षा-कक्ष में पाये जाते हैं, जो बच्चे के मानसिक उत्पीड़न के क्रम में (अनजाने या जानबूझकर) अपनाये जाते हैं। मसलन –

- न जानना, न समझना, न सीख पाना जैसे सामान्य लगने वाले व्यवहार का उपहास किया जाता है। यह बच्चे के मन में हँसी उड़ाये जाने का भय पैदा करता है। बच्चे असफ़लता एवं हँसी उड़ाये जाने के भय से नयी चीज़ें आज़माने की क्षमता खो देते हैं।
- शारीरिक दंड के इतर अन्य प्रकार के दंड के स्वरूप विद्यालयों में दिखलायी पड़ते हैं, जैसे कक्षा के बाहर खड़ा करना, अतिरिक्त काम देना, उपहास करना, किसी विशेष नाम (मूर्ख, बेवकूफ़, नालायक, बेकार, जाहिल, गंवार आदि) से संबोधित करना, बच्चे को अपनी रुचि की गतिविधि में शामिल होने से रोकना आदि।
- दंडित करने के पीछे मान्यता यह है कि बच्चे 'अच्छे' व्यवहार को सीख पाएँगे। दंडित करने की प्रक्रिया भय का वातावरण सृजित करती है। जिसके कारण बच्चे 'तथाकथित' अच्छे व्यवहार को अपनाते हैं। कतिपय बच्चे भयवश ऐसा व्यवहार रुटीन क्रम में कर भी लेते हों, परंतु उनका विद्यालय एवं विद्यालय के बाहर के व्यवहार में अंतर दिखायी देता है। निश्चित रूप से शिक्षा एक सायास प्रक्रिया है और सोची-समझी होती है, यह कोई बेतरतीब प्रक्रिया नहीं है। अत; इस प्रक्रिया में कुछ नियम, आचरण, संहिताएँ अपनाने की आवश्यकता होती है। यह

नियम, आचरण, नियमावली (चाहे जो नाम दे दें) बच्चों की सहभागिता एवं तार्किक आधार पर विकसित नहीं की गई हैं, ये औचित्यहीन हैं, तो बालकों से आँख मूँदकर उसका पालन करने की उम्मीद करना अलोकतांत्रिक है।

- बहुत बार दंड को बच्चे पुरस्कार की तरह देखने लगते हैं, उदाहरण के लिए, बच्चों को कक्षा से बाहर करके, दंडित करने की प्रक्रिया बच्चों को ऐसा व्यवहार अपनाने के लिए प्रेरित कर सकती है कि उन्हें बार-बार कक्षा से बाहर कर दिया जाए। इससे कम से कम कुछ समय तक तो कक्षा के भयपूर्ण एवं तनावपूर्ण माहौल से मुक्ति मिल जाए।
- बच्चों को कक्षा के सम्मुख डाँटना, उनका उपहास करना आदि प्रक्रियाएँ बच्चे में शर्मिन्दगी पैदा कर देती हैं, इससे कक्षा का पुन: सामना करने हेतु बच्चे के आत्मविश्वास में कमी आती है और बच्चा कक्षा से पलायन के अवसर एवं बहाने ढूँढ़ता है। प्रथम पीढ़ी के छात्र (First Generation Learner) इस दृष्टि से बहुत संवेदनशील होते हैं, इनके पलायन, ड्रॉप-आउट होने का जोखिम बढ़ जाता है।
- बेहतर अकादमिक प्रदर्शन न करने वाले बच्चों को दंडित करना, कक्षा-कक्ष में पाया जाने वाला आम व्यवहार है। किसी बच्चे के अकादमिक प्रदर्शन की तुलना किसी दूसरे बच्चे से करना एकदम अवैज्ञानिक एवं अतार्किक है। जब हम यह स्वीकारते हैं कि प्रत्येक बच्चा रुचि, सीखने के तरीके, सीखने की गति के संदर्भ में अनूठा है तो फ़िर यह तुलना क्यों? बच्चे के विगत प्रर्दशन से वर्तमान प्रर्दशन की तुलना करने का तर्क तो समझ में आता है। यह बच्चों को अपनी प्रगति के बारे में जानने का अवसर दे सकता है। अत: प्रतिस्पर्धा बहुत ज़रूरी ही है तो वह किसी दूसरे बच्चे से न होकर, स्वयं से होनी चाहिए, जिससे पहले से बेहतर करने के प्रयासों को दिशा मिल सके।
- बच्चों के बारे में सरसरी तौर पर (Casually) कोई टिप्पणी कर देना, उनके विचारों की उपेक्षा कर देना, यह दंड के कुछ प्रच्छन्न (Hidden) स्वरूप हैं, उपेक्षापूर्ण वातावरण बच्चों में तनाव एवं दुश्चिंता पैदा करता है। कक्षा-कक्ष में सम्मानपूर्ण एवं गरिमापूर्ण मानवीय व्यवहार, गर्मजोशी से भरा वातावरण बच्चों के सीखने के लिए प्रेरक वातावरण सृजित करता है। इसके लिए प्रत्येक बच्चे को सीखने की स्वतंत्र इकाई के रूप में स्वीकार करना होगा।

विभेदीकरण एवं नाम गढ़ना (Discrimination and Labelling) – दंड की बारंबारता से शिक्षक किसी बच्चे विशेष के बारे में दुराग्रहपूर्ण धारणा बना लेते हैं कि अमुक बच्चा बेहतर प्रदर्शन कर ही नहीं सकता। अत: उसके प्रति कक्षा-कक्ष में एक विभेदपूर्ण व्यवहार अपनाया जाता है। उससे बेहतर प्रदर्शन की उम्मीद छोड़ दी जाती है। इसका बच्चे के मनोमस्तिष्क पर ऐसा दुष्प्रभाव पड़ता है कि वह अपनी ओर से प्रयास करना ही छोड़ देता है। इसी के अगले क्रम में ऐसे बच्चों के कुछ नाम गढ़ (Label) दिए जाते हैं। किसी विद्यार्थी या विद्यार्थी समूह

को किसी विशेष लक्षण के आधार पर कोई नाम विशेषण दिया जाता है, जैसे– मूर्ख, डफ़र, स्लोलर्नर, ढीला आदि। ऐसे विद्यार्थी या विद्यार्थी समूह से बेहतर प्रदर्शन की उम्मीद छोड़ दी जाती है।

अध्यापक मान लेते हैं कि विद्यार्थी/विद्यार्थी समूह का यही अधिकतम प्रदर्शन स्तर है। नाम गढ़ना हमेशा विद्यार्थी/विद्यार्थी समूह के अवलोकन के आधार पर न होकर पूर्वाग्रह से भी संचालित होता है। बच्चों की सामाजिक/सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के आधार पर भी यह चलता रहता है। नाम गढ़ने के अलावा ऐसे विद्यार्थी/विद्यार्थी समूह की विशेषीकृत आवश्यकताओं को संबोधित नहीं किया जाता जिससे बच्चों पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। उनमें आत्मविश्वास की कमी, अपने पीयर ग्रुप में असहजता जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। यह बच्चों में तनाव एवं दुश्चिंता पैदा करता है। बहुधा अध्यापक अनजाने में भी इस तरह का व्यवहार करते हैं। अध्यापक अपनी भाव-भंगिमा (Gesture), हावभाव, मुख व्यवहार (Facial Expression) द्वारा इस प्रकार का विभेदीकरण कक्षा-कक्ष प्रक्रिया में स्थापित कर रहे होते हैं। अत: प्रत्येक अध्यापक को अभिव्यक्त और प्रच्छन्न व्यवहार के प्रति सतर्क रहने की आवश्यकता है। यह इसलिए भी आवश्यक है कि बच्चे के कक्षा-कक्ष एवं विद्यालय में तनाव एवं दुश्चिंता के परिप्रेक्ष्य में इनके गंभीर निहितार्थ हैं।

डराना-धमकाना एवं उत्पीड़न (Bullying and Harrasement)– विद्यालय एवं कक्षा-कक्ष में विद्यार्थियों में भय, तनाव एवं दुश्चिंता का एक महत्वपूर्ण कारण सहपाठियों, वरिष्ठ विद्यार्थियों के द्वारा डराना-धमकाना एवं उत्पीड़न करना है। विद्यार्थी विशेष/विद्यार्थी समूह विशेष को किसी विशेष कार्य को करने के लिए बाध्य करना, डराना, धमकाने की घटनाएँ प्राय: सुनने में आती हैं। ये कार्य पाठ्यचर्चा की गतिविधियों से असंगत ठहरती हैं। बच्चों को उसकी शरीराकृति, रंग, रूप आदि के आधार पर नाम गढ़ना एवं चिढ़ाना आदि अनौपचारिक तरीके से परेशान एवं उत्पीड़न किया जाता है। इतना ही नहीं कक्षा-कक्ष में अध्यापक द्वारा घोषित होशियार, अनुशासित एवं प्रतिभावान बच्चों को चिढ़ाने, डराने, धमकाने की प्रक्रिया भी कक्षा-कक्ष में चलती रहती है। इस प्रक्रिया में अध्यापक प्रत्यक्ष रूप से शामिल तो नज़र नहीं आता है, परंतु अध्यापक द्वारा बच्चों में तुलना करके एक कटु प्रतिस्पर्धी वातावरण तैयार कर दिया जाता है, जिसमें कक्षा-कक्ष में कतिपय विकृत प्रतिद्वंद्विता दिखलायी पड़ती हैं। एक बच्चे की दूसरे बच्चे से किसी भी आधार पर तुलना करना शिक्षण शास्त्रीय सिद्धांतों के प्रतिकूल है।

दूसरा, अध्यापक का कक्षा-कक्ष में अलोकतांत्रिक व्यवहार या फिर कक्षा-कक्ष/विद्यालय में अलोकतांत्रिक प्रक्रियाएँ कुछ विद्यार्थी /विद्यार्थी समूहों को असंतुष्ट कर देती हैं। अध्यापक बच्चे की गरिमा का सम्मान, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का सम्मान, कक्षा-कक्ष की विविधता को संसाधन के रूप में व्यवहृत करके अपने कार्य-आचरण द्वारा लोकतांत्रिक मूल्यों की प्रस्थापना कर सकते हैं। यह छात्रों को भी अनुकरण की प्रेरणा दे सकता है। उल्लेखनीय है कि लोकतांत्रिक मूल्य हमेशा थोपे नहीं जा सकते, इसके लिए अनुकरणीय व्यवहार सबसे उपयुक्त प्रतिमान

(Model) होते हैं। कक्षा-कक्ष में सामंजस्यपूर्ण व्यवहार हेतु बच्चों में समूह-कार्य, टीम-बिल्डिंग एवं पीयर लर्निंग जैसे सामूहिक गतिविधियों के नियोजन एवं आयोजन से प्रत्येक बच्चे को सहभागिता के अवसर देने हेतु अध्यापक को संवेदनशील रहने की आवश्यकता है।

अध्यापक एवं अभिभावक के मध्य निरन्तर संवाद की आवश्यकता है। जिसमें बच्चों की प्रगति के बारे में संवाद के अवसर हों। बच्चों की रुचि, अभिरुचि, सीखने की गति, तौर-तरीके एवं प्रदर्शन पर विमर्श हो। विर्मश के केंद्र में बच्चा हो, बच्चे के अकादमिक लक्ष्य हों, समग्र व्यक्तित्व का विकास हो। बच्चे के अपमान/उपहास एवं उपेक्षापूर्ण व्यवहार को निषिद्ध करने हेतु विमर्श में निरन्तरता रहे। प्राय: माता-पिता/अभिभावक अपनी अपेक्षाओं के अंबार प्रस्तुत करते हैं, वहीं विद्यालय/अध्यापक अपनी संसाधन सीमितता, नियम पालन की बाध्यता एवं संस्थागत सीमाओं से चिन्तित नज़र आते हैं। दोनों ही पक्षों को इससे बाहर निकलने की आवश्यकता है। चाहे हालात एवं स्थितियाँ कितनी ही प्रतिकूल क्यों न हों, इनसे बाहर निकलने के अवसर तो हमेशा मौजूद रहते हैं।

उक्त विमर्श के आलोक में हम कह सकते हैं कि हमें विद्यालय/कक्षा-कक्ष को एक ऐसे स्थान के रूप में विकसित करने की आवश्यकता है जो भयमुक्त वातावरण, तनावरहित प्रक्रियाओं एवं प्रदर्शन/उपलब्धियों की दुश्चिंताओं से रहित हो। जहाँ बच्चे ज्ञान से प्रेम करना सीखें, सीखने का आनंद उठाएँ, लोकतांत्रिक मूल्यों को आत्मसात् करें। विद्यालयों को आनंदालय में बदलना केवल चर्चा, नारों एवं भाषणों से तो शायद ही हो पाये, इसके लिए विद्यालय का वातावरण, प्रक्रियाएँ एवं मान्यताओं में बदलाव ज़रूरी है। इसे जितनी जल्दी हो अपनाना होगा क्योंकि बचपन को भय, तनाव एवं दुश्चिंता से मुक्त करने के लिए और अधिक इंतज़ार नहीं किया जा सकता।

संदर्भ

कन्वेंशन ऑन द राइट्स ऑफ़ द चाइल्ड, अडोपटिक एंड ओपन्ड फ़ॉर सिनैचर, *रेकटिफ़ेकेशन एंड अस्सेशन बाई जनरल* असेंबली रिज़ोल्यूशन 44/25, नवंबर 1989.

कपूर, अरुण. 2009. *बदलते विद्यालय तेजस्वी बच्चे.* हिन्द पॉकेट बुक्स, प्राईवेट लिमिटेड, जे-40, जोरबाग लेन, नयी दिल्ली 110003.

ड्यूवी, जॉन. 1998. *शिक्षा और लोकतंत्र,* प्रथम हिंदी संस्करण. लाडली मोहन माथुर (अनुवादक). ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्रा.लि., बी.-7, सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दिल्ली 110092.

_____. *स्कूल और समाज.* सुशील कपूर (अनुवादक). आकार बुक्स, 28 ई पॉकेट, एन. मयूर विहार, दिल्ली 110091.

डैनीसन, जार्ज. 1997. *बच्चों का जीवन.* पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा (अनुवादक). ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्रा.लि.,बी.-7, सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दिल्ली 110092.

नील, ए. एस. 2004. *समर हिल.* पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा (हिंदी अनुवाद). एकलव्य प्रकाशन. ई.-7/453 एच.आई.जी., अरेरा कालोनी, भोपाल 462016, म.प्र.

बधेका, गिजू भाई. 1991. *दिवास्वपन,* पहला संस्करण. काशिनाथ त्रिवेदी (अनुवादक). नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फ़ेज़-II, वसंन्त कुंज, नयी दिल्ली 110072.

भारत सरकार. 2009. *निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम – 2009.* भारत का राजपत्र, विधि एवं न्याय मंत्रालय, 27 अगस्त 2009.

मुकुंदा वी., कमला. 2009. *वॉट डिड् यू आस्क एट स्कूल टुडे – ए हैंडबुक ऑफ़ चाइल्ड लर्निंग.* भारत में प्रथम बार 2009 में कोलिन्स एन इंप्रिंट ऑफ़ कार्पर कोलिन्स पब्लिशर्स द्वारा प्रकाशित हुई. आई.एस.बी.एन.-978-81-7223-833-9.

मैथ्यूज़, गैरथ वी. 1996. *बच्चों से बातचीत.* सरला मोहन लाल (अनुवादक). ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्रा. लि., बी.-7, सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दिल्ली 110092.

यशपाल समिति का प्रतिवेदन. 1992. *शिक्षा बिना बोझ के (Learning Without Burden).* भारत सरकार, नयी दिल्ली.

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2005. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005.* प्रथम संस्करण. प्रकाशन प्रभाग, श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली 110016.

____. 2007. *मननशील शिक्षक,* प्रथम संस्करण. प्रकाशन प्रभाग. श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली 110016.

वारनर, सिल्विया एश्टन. 1996. *अध्यापक,* प्रथम हिंदी संस्करण. पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा (अनुवादक). ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्रा. लि., बी.-7, सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दिल्ली 110092.

शर्मा, संतोष (संपादक). 2006. *कंसट्रक्टिविस्ट एप्रोच टू टीचिंग एंड लर्निंग–ए हैंडबुक फ़ॉर सेकेंडरी स्टेज,* प्रथम संस्करण. प्रकाशन प्रभाग, एन.सी.ई.आर.टी., श्री अरविन्दो मार्ग, नयी दिल्ली 110016.

शर्मा, संतोष (संपादक). *वॉट इज़ आर.टी.ई.? सम वेयज़ ऑफ़ मेकिंग एजुकेशन एकसेसिबल–ए हैंडबुक फ़ॉर टीचर.* प्रकाशन प्रभाग, एन.सी.ई.आर.टी., श्री अरविन्दो मार्ग, नयी दिल्ली 110016.

सीबिया, अंजुम. 2002. *वेल्युइंग टीचर क्वेशनिंग,* प्रथम संस्करण. प्रकाशन प्रभाग, एन.सी.ई.आर.टी., श्री अरविन्दो मार्ग, नयी दिल्ली 110016. नवंबर 2002.

होल्ट, जॉन. *शिक्षा की बजाय.* सुशील जोशी (हिंदी अनुवाद). एकलव्य प्रकाशन. ई.-7/453, एच. आई. जी., अरेरा कालोनी, भोपाल 462016, म.प्र.

____. 1993. *बच्चे असफ़ल कैसे होते है.* पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा (हिंदी अनुवाद). एकलव्य प्रकाशन. ई.-7/453 एच. आई. जी., अरेरा कालोनी, भोपाल 462016, म.प्र.

____. 2006. *असफ़ल स्कूल.* हिंदी अनुवाद – पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा. एकलव्य प्रकाशन. ई.-7/453 एच. आई. जी., अरेरा कालोनी, भोपाल-462016, म.प्र.